इकाई 23 औपनिवेशिक आधिपत्य की पद्धतियां – II : अप्रत्यक्ष शासन

इकाई की रूपरेखा

23.0 उद्देश्य

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप:

- अप्रत्यक्ष शासन की प्रकृति को समझ सकेंगे;
- इस प्रकार के शासन के उदय के कारणों से परिचित हो सकेंगे; और
- दुनिया के कई क्षेत्रों में अप्रत्यक्ष औपनिवेशिक शासन के प्रभाव और वास्तविक कार्य पद्धति का विवेचन कर सकेंगे।

23.1 प्रस्तावना

जहां एशिया और अफ्रीका के बड़े हिस्सों में प्रत्यक्ष औपनिवेशिक शासन स्थापित किया गया वहीं कुछ क्षेत्रों में उपनिवेशवाद का अप्रत्यक्ष रूप भी सामने आया। अप्रत्यक्ष शासन का क्या लाभ है ? इस प्रकार के शासन में, जिसे अर्ध उपनिवेशवाद भी कहा जाता है, देश की सत्ता स्थानीय शासकों के हाथ में होती है परंतु वे एक कमजोर और अप्रत्यक्ष शासक होते हैं। वहां की आर्थिक गतिविधियों पर साम्राज्यवादी शक्तियों का नियंत्रण होता है। वे वहां से अपनी जरूरत के अनुसार ज्यादा से ज्यादा कच्चा माल प्राप्त करते हैं और अपने तैयार मालों को बेचते हैं।

आर्थिक दृष्टि से अप्रत्यक्ष शासन को अर्ध उपनिवेशवाद भी कहा जा सकता है। आगे हम अप्रत्यक्ष शासन के बदले में अर्ध उपनिवेशवाद का ही इस्तेमाल करेंगे। इसका कारण यह है कि अर्ध उपनिवेशवाद कहने से साम्राज्यवादी शक्तियों और कम विकसित देशों के असमान संबंधों का खुलासा होता है। यह संबंध शोषणात्मक होता है जिसमें विभिन्न रणनीतियों और चतुराई द्वारा अर्ध उपनिवेशों की अर्थव्यवस्था का उपयोग साम्राज्यवादी शक्तियों के लाभ के लिए किया जाता है। कुछ इतिहासकार प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष शासन में अन्तर करने के लिए 'औपचारिक' और 'अनौपचारिक' वर्गीकरण का उपयोग करते हैं।

23.2 अर्ध उपनिवेशवाद

अप्रत्यक्ष शासन की व्यवस्था के उदय के अनेक कारण थे। बहुपक्षीय व्यापार में वृद्धि, परस्पर विरोधी साम्राज्यवादी हितों में सामंजस्य स्थापित करना और कुछ परिस्थितियों में प्रत्यक्ष शासन की तुलना में अप्रत्यक्ष शासन करने में होने वाले कम खर्च जैसे कुछ कारक इसके उदय के लिए उत्तरदायी थे। 1860 के दशक के आस-पास अर्ध उपनिवेशवाद का उदय हुआ। इस तरह बहुपक्षीय व्यापार का उदय हुआ। अमेरिकी गृह युद्ध के कारण हुई आर्थिक तेजी और स्वेज नहर (यह 1869 में खुला था जिसकी जानकारी आपको इकाई 22 में दी जा चुकी है) का निर्माण भी अर्ध-उपनिवेशवाद के उदय के लिए उत्तरदायी कुछ महत्वपूर्ण कारक थे। समुद्री परिवहन में हुई प्रौद्योगिकी क्रांति के कारण माल भाड़े में कमी आई। इस समय तक बेल्जियम, फ्रांस, अमेरिका, जर्मनी और रूस सभी औद्योगीकरण के विभिन्न चरणों से गुजर रहे थे, और अपने औद्योगिक उत्पादों के लिए कच्चा माल और बाजार तलाश कर रहे थे। इसके परिणामस्वरूप इस युग में बिना किसी रुकावट के पूरी दुनिया में व्यापार किया जाने लगा।

इस चरण में किसी भी साम्राज्यवादी शक्ति के लिए, किसी खास क्षेत्र पर नियंत्रण स्थापित करना मुश्किल था क्योंकि इंग्लैंड ने मुक्त व्यापार के सिद्धांत को सामने रखा था जिसके तहत प्रमुख साम्राज्यवादी ताकतों के बीच आपसी बंटवारे की व्यवस्था थी।

23.2.1 मुक्त व्यापार

मुक्त व्यापार का सिद्धांत पूर्ण उपनिवेशों के समान ही अर्ध उपनिवेशों के लिए भी उतना ही घातक था। औद्योगिक क्रांति की सफलता के बाद पश्चिमी दुनिया में जब ब्रिटेन को आर्थिक सर्वोच्चता मिल गई तो वह मुक्त व्यापार की बात करने लगा जिसके तहत व्यापार करने वाले सभी देशों द्वारा विदेशी व्यापार पर सभी प्रकार के शुल्क और कर हटा दिए जाने थे। जैसा कि कई राजनैतिक अर्थशास्त्रियों ने बताया है कि मुक्त व्यापार की अवधारणा एक मिथ्या थी। मुक्त व्यापार से केवल इंग्लैंड को ही फायदा था। मुक्त व्यापार व्यवस्था आदर्शत: उसी स्थिति में काम कर सकती थी जब सभी देश आर्थिक विकास के एक स्तर पर खड़े होते। 19वीं शताब्दी में वस्तुत: एशिया अफ्रीका की पिछड़ी अर्थव्यवस्था पर मुक्त व्यापार लादा गया जिनके उत्पाद जैसे हथकरघा से बना समान, इंग्लैंड के मिल में मशीन के बने कपड़ों के सामने टिक नहीं सकते थे। लैंकशायर और मैनचेस्टर में बने सस्ते कपड़े जल्द ही उपनिवेशों और अर्ध उपनिवेशों के बाजार में बड़ी संख्या में उपलब्ध हो गए। इसने देशी अर्थव्यवस्था को नष्ट कर दिया।

23.2.2 जटिल परिस्थितियों में अप्रत्यक्ष शासन को प्राथमिकता

जिन देशों में अलग-अलग जातीय पृष्ठभूमि के लोग रहते थे और जहां कई प्रकार की सांस्कृतिक और राजनैतिक प्रथाएं मौजूद थीं उन क्षेत्रों में अप्रत्यक्ष शासन लागू किया गया। औटोमन साम्राज्य और चीन इस प्रकार के शासन के उदाहरण हैं। इसका कारण यह था कि इन क्षेत्रों में साम्राज्यवादी ताकतों के लिए अनेक प्रांतीय राज्यों और शासकों की अपेक्षा एक केंद्रीकृत प्रशासन से निपटना ज्यादा आसान था। औटोमन साम्राज्य पर बातचीत करते समय हम इस पर विस्तार से चर्चा करेंगे। साम्राज्यवादी ताकतों के बीच बंटवारे की व्यवस्था आराम से चलती रहे इसके लिए जरूरी था कि देश चलाने का काम देशी राज्य पर छोड़ दिया जाए। चाहे वह चीन के शासक हों या औटोमन साम्राज्य के, वे देश को सुव्यवस्थित रूप से चलाने में सक्षम थे परंतु वे पहले की तरह स्वतंत्र नहीं थे। बाहरी ताकतों के आदेशों का पालन करने वाले और कमजोर शासक को ही साम्राज्यवादी ताकतें पसंद करती थीं। उसे अपने क्षेत्र में कुछ हद तक राजनैतिक और आर्थिक आधुनिकीकरण करने के लिए प्रोत्साहित किया जाता था। अतएव 1830 के दशक से इस्तानबुल शासन (औटोमन साम्राज्य) की राजनैतिक पुनर्व्यवस्था या तंजिमात को यूरोपीय शक्तियों ने सक्रिय प्रोत्साहन दिया। इस पुनर्व्यवस्था के तहत सरकारी ढांचों का पश्चिमीकरण किया गया और राज्य का नए सिरे से केंद्रीकरण किया गया। 1860 के दशक से चीन में साम्राज्ञी सु-जी के नेतृत्व में आत्मदृढ़ीकरण आंदोलन चला।

साम्राज्यवादी ताकतों को अप्रत्यक्ष शासन से ज्यादा सहूलियत थी क्योंकि उन्हें सरकार की जिम्मेदारी नहीं लेनी पड़ती थी परंतु वे अर्ध उपनिवेशों की आन्तरिक राजनीति और झगड़ों में हस्तक्षेप करने से बाज नहीं

आते थे। इसका मतलब गह नहीं है कि प्रत्यक्ष शासन के लाभ नहीं थे। प्रत्यक्ष शासन या पूर्ण उपनिवेशवाद में साम्राज्यवादी ताकत को अपने हितों की पूर्ति के लिए अतिरिक्त आर्थिक साधन भी आसानी से प्राप्त होते थे। इसमें अन्य औद्योगिक देशों के व्यापार और निवेश को रोका जा सकता था, स्थानीय लोगों से कर वसूला जा सकता था और अधिक आसानी से उपनिवेश का धन अपने देश ले जाया जा सकता था। अर्ध उपनिवेशी स्थितियों में साम्राज्यवादी ताकतों ने मजबूत देशी मित्र बनाए जिन्होंने उनके हितों की पूर्ति में मदद की। चिली इसका एक अच्छा उदाहरण है। वहां देशी खनन में कार्यरत वर्ग और बड़े भूमिपतियों तथा आयात करने वाले व्यापारियों ने ब्रिटिश और अमेरिकी साम्राज्यवादियों के साथ सहयोग किया जिसे आन्द्रेगुंडर फ्रैंक 'अल्प विकास का विकास मानते हैं।'

23.2.3 परस्पर विरोधी साम्राज्यवादी हितों के बीच सामंजस्य

साम्राज्यवादी शक्तियों की प्रतिस्पर्द्धा के कारण भी अर्ध उपनिवेशवाद का उदय हुआ। औटोमन साम्राज्यवाद इसका अच्छा उदाहरण है। 'यूरोप के बीमार आदमी' अर्थात तुर्की के मामले में ब्रिटेन और रूस के प्रतिद्वंद्वितापूर्ण साम्राज्यवादी हितों में सामंजस्य स्थापित करने का प्रयत्न किया गया। यही बात चीन पर भी लागू होती थी जहां खासकर रूस मंचु शासन को हटाऐ जाने की अपेक्षा उसे कायम रखने के पक्ष में था क्योंकि उसे हटाए जाने से चीन पर अंग्रेजों का नियंत्रण मजबूत हो जाता। वहां जापानियों और जर्मनों का भी स्वार्थ था। लैटिन अमेरिका में संयुक्त राज्य अमेरिका अपना वर्चस्व स्थापित करना चाहता था और इसी कारण से उसने सबको हटाने का प्रयत्न किया।

बोध प्रश्न 1

1) अर्ध उपनिवेशवाद या अप्रत्यक्ष शासन की प्रमुख विशेषताओं का 100 शब्दों में विवेचन कीजिए।

....

....

....

....

....

....

23.3 अप्रत्यक्ष शासन के कुछ उदाहरण

जिन परिधीय देशों की चर्चा हम करने जा रहे हैं उनके कुछ अनुभव आपस में मिलते जुलते हैं। जैसा कि इतिहासकार सेवकेट पामुक ने अपने अध्ययन में बताया है कि "इस एकता के भीतर अनेकता भी मौजूद है। शेष दुनिया की अर्थव्यवस्था से संबंध स्थापित करने और इसके परिणमस्वरूप वहां विकसित ढांचे की दृष्टि से प्रत्येक देश का इतिहास अलग है"। जिन चार उदाहरणों चीन, औटोमन साम्राज्य, इरान और लैटिन अमेरिका का अध्ययन करने हम जा रहे हैं उसे पामुक दो वर्गों में विभाजित करते हैं। प्रथम तीन उदाहरणों को उसने एक वर्ग में रखा है जहां मजबूत राज्य संरचनाएं और केंद्रीकृत नौकरशाही विद्यमान थी। इन क्षेत्रों में अक्सर नौकरशाही और उन सामाजिक वर्गों के बीच संघर्ष चलता रहता था जो विश्व अर्थव्यवस्था के साथ अधिक तेजी से जुड़ना चाहते थे और प्रत्यक्ष संबंध रखना चाहते थे उदाहरण के लिए निर्यात उन्मुख भूमिपति। साम्राज्यवादी शक्तियें अपनी आपसी प्रतिद्वंद्विता के कारण सामाजिक वर्गों की अपेक्षा नौकरशाही से ज्यादा संपर्क में आती थीं। वे केंद्रीकृत संरचनाओं को राजनैतिक, सैनिक और वित्तीय 'समर्थन' देती थीं जो इस समय अपने को कमजोर और असमर्थ महसूस कर रही थीं। इस समर्थन के बदले साम्राज्यवादी शक्तियां प्रमुख बड़ी निवेश परियोजनाओं के लिए वाणिज्यिक विशेषाधिकार या रियायत प्राप्त करते थे। दूसरी ओर लैटिन अमेरिका के मामले में एक साम्राज्यवादी ताकत, जैसे अमेरिका, ने अपने प्रभाव का इस्तेमाल

किया था। विभिन्न लैटिन अमेरिकी देशों में शासक समुदायों के हितों की रक्षा करने की दृष्टि से व्यापार किया गया और साम्राज्यवादी शक्ति ने पूंजी निवेश किया।

23.3.1 चीन

अर्ध उपनिवेशवाद की स्थापना के संदर्भ में सबसे पहले हम चीन का उदाहरण सामने रखेंगे। चीन के मंचु शासन नें आरंभ से ही पश्चिमी शक्तियों का जम कर विरोध किया था और उन्हें 'बर्बर' कहा था। चीन के सम्राट ने विदेशियों को चीन के एक सीमित क्षेत्र में ही रोक रखने के लिए सभी संभव उपाय किए और अठारहवीं शताब्दी के बाद कई वर्षों तक यूरोपीय व्यापारियों को केवल कैंटन शहर के जरिए ही चीन से व्यापार करने की अनुमति मिली थी जो पिकिंग के बिलकुल दूसरे छोर पर स्थित था। पश्चिमी व्यापारियों के केवल चीनी व्यापारियों के साथ संबंध थे न कि सरकारी अधिकारियों के साथ। चीन से होने वाली प्रमुख निर्यात वस्तुओं, जैसे रेशम और चाय, को कैंटन से कम से कम 500 मील की दूरी तक जमीन के रास्ते ले जाना पड़ता था क्योंकि चीनी सरकार को यह आशंका थी कि यदि सामान नौका द्वारा भेजा गया तो व्यापारी सीमा शुल्क बचाने का प्रयत्न करेंगे। यूरोपीय व्यापारी केवल जाड़े के महीनों में ही कैंटन आ सकते थे, चीनी नौकर नहीं रख सकते थे या पालकी में नहीं बैठकर चीनी सम्राट के सामने अपना सिर जमीन पर लगाना पड़ता था। सकते थे। उन्हें चीनी सम्राट के सामने 'कोतो' भी करना पड़ता था अर्थात उन्हें घुटने के बल बैठकर चीनी सम्राट के सामने अपना सिर जमीन पर लगाना पड़ता था जिसे वे पसंद नहीं करते थे। इसी प्रकार 'पिंग' या रियायत के लिए सम्राट को आवेदन देने की प्रथा का भी यूरोपीय व्यापारी जमकर विरोध किया करते थे परंतु चीन के सत्ताधारी इस बात पर बल देते थे। व्यापारियों का यह विरोध चलता रहा। आरंभिक वर्षों में चीन को पश्चिमी वस्तुओं की जरूरत नहीं थी इसलिए चीन की चाय और रेशम के बदले पश्चिम को सोना और चांदी देना पड़ता था। परंतु अन्ततः चीन को पश्चिमी साम्राज्यवादी ताकतों का आर्थिक गुलाम बनना पड़ा।

ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कम्पनी के पक्ष में व्यापार संतुलन बनाने में अफीम व्यापार का घृणित तरीका इस्तेमाल किया। अफीम व्यापार में ब्रिटेन, भारत और चीन शामिल था। इस व्यवस्था के तहत अंग्रजों की देखरेख में भारत के कई हिस्सों में काफी मात्रा में अफीम उपजाया जाता था और तब उसे पानी के जहाज में चीन भेजा जाता था। यूरोप के बाजार के लिए वहां से इसके बदले में चीनी, चाय प्राप्त की जाती थी। चीन के लोगीं में अफीम की बुरी लत फैलाने में कोई कसर नहीं छोड़ी गई और वहां के उत्साही और बुद्धिमान लोग अफीम के नशे में धीरे-धीरे आलसी और कमजोर होते चले गए। चीन के अधिकारियों ने अफीम के व्यापार की दुष्प्रभावों को महसूस किया और इसे रोकने या कम से कम नियंत्रित करने का प्रयत्न किया। हु-क्वांग के गर्वनर जेनरल ने चेतावनी दी कि यदि अफीम को आने से नहीं रोका गया तो कुछ ही दशकों में चीन के पास शत्रु से लड़ने के लिए कोई योद्धा नहीं होगा। इसके अलावा सेना के रखरखाव के लिए पर्याप्त धन भी उपलब्ध नहीं होगा।

चीन के शासकों ने अफीम की आपूर्ति पर रोक लगाने की कोशिश की जिसके परिणामस्वरूप 1839-42 के अफीम युद्ध हुए। परंतु इस युद्ध के बाद चीन की सेना की कमजोरी सामने आई। वस्तुतः अफीम युद्धों में चीन की हार के बाद वहां पश्चिमी हस्तक्षेप के नए चरण की शुरुआत हुई। 29 अगस्त 1842 को बंदूक के जोर पर हुई नानकिंग की संधि की धारा 13 के तहत ब्रिटिश व्यापार के लिए 5 बन्दरगाह खोल दिए गए, हांगकांग के बन्दरगाह शहर पर ब्रिटेन का अधिकार हो गया और चीन को 21 मिलियन डॉलर का हर्जाना ब्रिटेन को देना पड़ा। इस प्रकार ब्रिटेन को चीन में एक विशेष देश का दर्जा मिल गया और उन्होंने अतिरिक्त क्षेत्रीय अधिकार भी प्राप्त कर लिए जिसके अनुसार चीन में अपराध करने वाले विदेशियों पर चीनी ट्रिब्यूनल में नहीं बल्कि उनकी अपनी अदालतों में मुकदमा चलाया जाता था। नई कर व्यवस्था के अन्तर्गत 5% आयात शुल्क निश्चित किया गया। यह दर मौजूदा दर से ज्यादा थी। इसलिए चीन के लोगों को यह लाभकारी प्रतीत हुआ परंतु लंबे समय में चीन की बजाय ब्रिटेन को इससे ज्यादा फायदा हुआ। इसका कारण यह था कि हमेशा के लिए कर तय कर देने से चीनियों ने भविष्य में शुल्क दर बढ़ाने का अधिकार खो दिया।

ब्रिटेन को जब ये रियायतें प्राप्त हो गईं तब उसके बाद फ्रांसीसी और अमेरिकी भी इसी प्रकार की संधियों की मांग करने लगे। चूंकि चीनी अधिक टकराव नहीं चाहते थे इसलिए उन्होंने अमेरिका और फ्रांस की

बात मान ली। उनका यह मानना था कि उनकी मांगे मान लेने से चीनियों को कोई घाटा होने वाला नहीं था क्योंकि उन्हें ब्रिटेन के मुनाफे में से ही हिस्सा मिलना था। 3 जुलाई 1844 को अमेरिका के साथ वांगशिया की संधि और 24 अक्टूबर 1844 को फ्रांसीसियों के साथ व्हमपोआ की संधि पर हस्ताक्षर किया गया। इन देशों को भी विशेषाधिकार मिले। अतिरिक्त – क्षेत्रीय अधिकार मिले और एक निश्चित शुल्क देने का अधिकार मिला। इन तीन राष्ट्रीय अधिकारों को देने के बाद चीन एक अर्ध औपनिवेशिक राज्य बन कर रह गया। स्थाई सीमा शुल्क दर के कारण चीन में बड़े पैमाने पर विदेशी सामान लाना आसान हो गया और चीन के हस्तशिल्प बरबाद हो गए। इस लिहाज से अर्ध उपनिवेशवाद के परिणाम पूर्ण उपनिवेशवाद से बहुत भिन्न नहीं थे। विदेशी शक्तियां चीनी सरकार के साथ विद्वेषपूर्ण रवैया अपनाने लगीं। 1858 में विदेशी प्रतिनिधियों को पिकिंग ले जाने के मार्ग के संबंध में हुई गलतफहमी के कारण ब्रिटिश और फ्रांसीसी सेना राजधानी की ओर बढ़ी। सम्राट भागकर मंचूरिया चला गया। 1860 में इस युद्ध की समाप्ति के बाद चीन के साथ कई संधियां हुईं जिसके कारण पश्चिमी देश चीन में अन्दर तक प्रविष्ट हो गए। अफीम व्यापार को कानूनी बना दिया गया और इस पर कर लगाया गया। मंजूरी प्राप्त व्यापारिक केंद्रों की सूची में 11 और बन्दरगाह जोड़ दिए गए और विदेशियों को चीन के सभी हिस्सों में यात्रा करने का अधिकार दे दिया गया।

इन संधियों के बाद पश्चिमी ताकतों ने यह महसूस किया कि चिंग शासन को समाप्त कर ही वे लम्बे समय तक अपनी रियायतों को कायम रख सकते हैं। 1864 के बाद चिंग दरबार में 'पुनरूत्थान के स्पष्ट लक्षण' दिखाई देने लगे। वहां आत्मदृढ़ीकरण आंदोलन की शुरुआत की जिसमें पश्चिमी सैनिक और प्रौद्योगिकी के तरीकों का इस्तेमाल किया जाने लगा। राज्य की ताकत विधवा महारानी जू सी के पास थी जो अवयस्क सम्राट तुंग चिह के बदले में शासन चला रही थी। उसने 11 वर्षों तक शासन चलाया। 1862–74 के बीच सम्राट तुंग-ची एक कमजोर शासक सिद्ध हुआ। इस अवधि में आधुनिक जहाजरानी, रेलवे, खनन ओर टेलीग्राफ व्यवस्था की शुरुआत हुई। कुछ कपड़े के मिल, माचिस की कम्पनियां और लोहे के कारखाने भी स्थापित किए गए। निश्चित रूप से इनमें से अधिकांश की स्थापना विदेशी सहायता से हुई थी। पिकिंग में ब्रिटिश मंत्री और सीमा शुल्क के महानिरीक्षक राबर्ट हर्ट प्रमुख अधिकारी थे (1807 के बाद चीनी सीमा शुल्क सेवा के उच्चस्थ पदों पर विदेशियों की नियुक्ति हुई और महानिरीक्षक अंग्रेज होता था)। हालांकि आधुनिकीकरण के ये प्रयास काफी हद तक सतही थे और पश्चिमी राजनैतिक संस्थाएं नहीं अपनाई गईं। ये सभी प्रयत्न अंततः लड़खड़ाते हुए मंचु शासन को नहीं बचा सके।

उन्नीसवीं शताब्दी के अंत में चीन का प्रभाव क्षेत्रों में विभाजन शुरु हो गया। पुराने विदेशी राष्ट्रों के अलावा जर्मनी और जापान भी चीन से रियायत प्राप्त करने की होड़ में शामिल हो गए। 1860 में चीन के एक बड़े हिस्से पर रूस का कब्जा होने के बाद ही यह सब शुरु हुआ। रूस ने मंचुरिया के चारो ओर अपना कब्जा जमा लिया और कोरिया के उत्तर में समस्त एशियाई समुद्र तट पर अपना नियंत्रण स्थापित कर लिया। कूटनीतिक और सैनिक तरीके अपनाकर फ्रांस ने स्याम (थाइलैंड) को छोड़कर पूरे इंडो-चीन (वियतनाम और कम्बोडिया) पर नियंत्रण स्थापित कर लिया। चीन के दक्षिण प्रांत यूनान में ब्रिटिश अन्वेषक की हत्या के बाद ब्रिटन ने चीन से ऊपरी बर्मा पर अपने आधिपत्य की मांग की। 1886 में चीन ने उसकी यह मांग स्वीकार कर ली। जापानियों ने 1881 में रीयुकु द्वीप समूह (पूर्वी चीन समुद्र में) पर आधिपत्य की मांग की। 1887 में पुर्तगालियों ने मकाओ पर नियंत्रण स्थापित कर लिया जिसके लिए वे 300 वर्षों से प्रयत्नशील थे। 1894-95 में चीन जापान युद्ध में चीन की हार के बाद पूरी दुनिया के सामने इसकी कमजोरी सामने आ गई। रूस, ब्रिटेन, फ्रांस, जर्मनी और जापान– इन पांच बड़ी शक्तियों ने अपने-अपने हितों के अनुसार चीन के प्रमुख भागों को अनेक प्रभाव क्षेत्रों में विभाजित कर दिया गया। इस प्रकार चीन बड़ी शक्तियों पर आर्थिक रूप से निर्भर हो गया।

23.3.2 लैटिन अमेरिका

लैटिन अमेरिका के साथ अलग प्रकार की ही घटना घटी। 19वीं शताब्दी के प्रथम दो दशकों में उसने अपने को स्पेन और पुर्तगालियों के प्रत्यक्ष शासन से मुक्त किया। इस 'आजादी' के बाद उसका साम्राज्यवादी शोषण शुरु हो गया। इसकी भौगोलिक स्थिति ऐसी थी कि संयुक्त राज्य अमेरिका, जो कि हाल में आजाद हुआ था, के वर्चस्व का खतरा इसके ऊपर मंडराने लगा। यह क्षेत्र संयुक्त राज्य अमेरिका के नजदीक था। अमेरिकियों

ने यहां स्वाभाविक रूप से प्रत्यक्ष शासन को प्राथमिकता दी क्योंकि वे खुद उपनिवेशवाद को न्यायोचित नहीं ठहरा सकते थे। परंतु मोनरो सिद्धांत लागू किए जाने से यह तय हो गया कि कोई भी दूसरी पश्चिमी शक्ति इस इलाके में, जिसे अमेरिका का "पिछवाड़ा" कहते थे, नहीं जा सकती थी। 1823 में बने इस सिद्धांत में कहा गया था कि संयुक्त राज्य अमेरिका मध्य या दक्षिणी अमेरिका में किसी भी पुराने औपनिवेशिक शासन की स्थापना या विस्तार का विरोध करेगा। किसी भी यूरोपीय शक्ति को इस इलाके में अपना प्रभाव बढ़ाने नहीं दिया जाएगा।

आज के मध्य और दक्षिण अमेरिका में शामिल 20 देशों को हम लैटिन अमेरिका कहते हैं। जब इस क्षेत्र ने आजादी पाई तो वहां 9 संप्रभुता सम्पन्न राज्य थे। 1860 तक विभाजन के द्वारा बढ़कर यह संख्या 13 हो गई।

लैटिन अमेरिका प्राकृतिक संसाधनों से सम्पन्न था। यहां विविध प्रकार के खनिज पाए जाते थे। आधे दक्षिण अमेरिका में ब्राजिल का क्षेत्र था और कभी-कभी इसे महाद्वीप के भीतर एक महाद्वीप कहा जाता था। वहां सोना, लोहा, फॉस्फेट, सीसा, प्लैटिनम, बॉक्साइट, जिंक, टिन, क्रोम, कोबाल्ट और तमाम प्रकार के रेडियोधर्मी खनिज पाए जाते थे। चिली में नाइट्रेट का उत्पादन होता था। इस खनिज का इंग्लैंड में 19वीं शताब्दी में लम्बे समय तक उपयोग कृषि की उपज बढ़ाने के लिए किया गया।

19वीं शताब्दी के दौरान लैटिन अमेरिका का विकास कैसे हुआ ? एडवर्ड मैक नालबर्न्स, फिलिप ली रैल्फ, रॉबर्ट इ लर्नर और स्टैंडिश मैकेम ने अपनी पुस्तक *वर्ल्ड सिविलाइजेशन*, दिल्ली 1991, भाग सी, में इसकी चर्चा की है। जैसा कि 19वीं शताब्दी में औद्योगिक दुनिया के सम्पर्क में आए सभी पिछड़े उपनिवेशों में हुआ वैसा ही लैटिन अमेरिका में भी हुआ और वहां प्रौद्योगिकी आधुनिकीकरण हुआ। बिजली, पानी से चलने वाले जहाज जैसी सुविधाएं उपलब्ध हुईं। टेलीग्राफ और रेलवे लाइनें बिछाई गईं जिससे बन्दरगाह और अन्दरूनी इलाके जुड़ गए। हालांकि इन रेलवे लाइनों से निर्यात को ही बढ़ावा मिल सका पर आंतरिक आवागमन व्यवस्था में कोई खास परिवर्तन नहीं हुआ।

कृषि पर साम्राज्यवाद के कई प्रभाव पड़े। खेती और चरागाह की जमीन पर रेलवे लाइनें बिछाई गईं। रेलवे निर्माण की लागत के लिए वित्त प्राप्त करने के लिए किसानों पर अधिक कर का बोझ डाला गया। किसान निर्यात करने के लिए ज्यादा और स्थानीय बाजार के लिए कम से कम खाद्य सामग्री का उत्पादन करने लगे। इस कारण अन्तरराष्ट्रीय बाजार में होने वाले उतार चढ़ाव का उन पर सीधा प्रभाव पड़ने लगा।

समय-समय पर लैटिन अमेरिका के देशों के विभिन्न उत्पादों को अन्तरराष्ट्रीय बाजार में प्रसिद्धि मिली। सबसे पहले ब्राजिल के उत्पादों का ही उदाहरण लें। 1500 ई. में पुर्तगालियों ने ब्राजिल में पाई जाने वाली लाल लकड़ी की 'खोज' की जिसका उपयोग कपड़ा रगांई में किया जाता था। इसकी खूब मांग थी। एक शताब्दी बाद 1600-1700 ई. में ब्राजील ने पूरे यूरोप को चीनी की आपूर्ति की। सूडान, गिनी, अफ्रीका के पश्चिमी तट यहां तक कि अंगोला के दास श्रमिकों की सहायता से बड़ी मात्रा में गन्ना उपजाया गया जिसके कारण वहां की जमीन की ऊर्वरता में भी कमी आई। अन्तत: वेस्ट इंडिज इस प्रतिस्पर्धा में सामने आया और इस प्रकार ब्राजिल में चीनी का युग समाप्त हो गया। परंतु इससे ब्राजिल का आर्थिक महत्व कम नही हुआ। पूरी 18वीं शताब्दी में ब्राजिल ने पूरी दुनिया को सबसे ज्यादा सोना उपलब्ध कराया। यह कहा जाता है कि 1762 में जब पुर्तगाल की राजधानी लिस्बन भूकम्प से नष्ट हो गई थी तो ब्राजिल से इसके पुनर्निर्माण को वित्त प्रदान करने के लिए डेढ़ टन सोना भेजा गया था। सोने के अलावा लोहा, फॉस्फेट, सीसा, प्लेटिनम और अन्य खनिज पदार्थों का भी निर्यात होता रहा। एक समय ऐसा आया जब अन्य सभी लैटिन अमेरिका देशों की तरह ब्राजिल की अर्थव्यवस्था भी बड़े ही नाजुक स्थिति में थी क्योंकि यह पूरी तरह एक या दो खनिज पदार्थों के निर्यात पर ही निर्भर थी। इन वस्तुओं का निर्यात अन्तरराष्ट्रीय बाजार के लिए होता था जो बड़ा ही अनियमित था और एक बार अन्तरराष्ट्रीय दामों के गिरने से देश की पूरी अर्थव्यवस्था को खतरा था।

1858 ओर 1868 के बीच कर्लिफोनिया और आस्ट्रेलिया के गेहूं बाजारों के बंद हो जाने के कारण चिली से गेहूं के निर्यात पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा। इसके कारण चिली में व्यापारियों को दिवालियापन का सामना करना पड़ा।

व्यवहार में लगभग सभी लैटिन अमेरिकी देशों में स्थानीय आर्थिक शक्तिशाली समूह थे जिन्होंने साम्राज्यवादी ताकतों के साथ गठजोड़ किया हुआ था। आन्द्रे गुंडर फ्रैंक ने प्रमाण देकर यह बताया है कि 1929 की मंदी तक चिली की अर्थव्यवस्था पर तीन समूहों का वर्चस्व था। उत्तर में खनन निर्यातकों, दक्षिण में कृषि और पशुधन निर्यातकों और सैन्टिगो तथा वैल्पारसो अर्थात केंद्र में स्थित बड़े आयात प्रतिष्ठानों (जो कि वास्तविक तौर पर पूरे देश में क्रियाशील थे) का पूरी अर्थव्यवस्था पर कब्जा था। वे आराम की जिन्दगी व्यतीत करते थे और यूरोप के विशिष्ट वर्गों की जीवन शैली की नकल किया करते थे। इन तीनों समूहों के देशी उद्योगों के विकास में तनिक भी रूचि नहीं थी। वे मुक्त व्यापार के पक्ष में थे और आन्तरिक विकास के बजाए वे व्यापार को ज्यादा से ज्यादा बढाना चाहते थे। 1930 के दशक तक आर्थिक, राजनैतिक और सामाजिक क्षेत्रों में उनका बोलबाला रहा। गुंडर फ्रैंक ने इन्हें 'नकली- पूंजीवादी बुर्जुआ वर्ग' कहा है जो अपने देश के आम लोगों का शोषण करते थे और साम्राज्यवादियों की नकल किया करते थे।

लैटिन अमेरिका में उदारवादी जनतंत्र की स्थापना न हो सकी। हालांकि कई क्रांतियां हुईं किंतु अधिकांश क्षेत्रों में तानाशाही स्थापित हो गई। इन क्रांतियों में अभूतपूर्व खून-खराबा हुआ। यह बड़ी ही विचित्र बात है कि संयुक्त राज्य अमेरिका के प्रभाव क्षेत्र में रहने के बावजूद वहां पश्चिमी प्रजातंत्र के सिद्धांतों को नहीं अपनाया जा सका। यहां एक सवाल अक्सर उठता है कि क्या संयुक्त राज्य अमेरिका ने इन क्षेत्रों में प्रजातंत्र के विकास में बाधा पहुंचाई है ताकि उसके साम्राज्यवादी हितों को कोई हानि न पहुंचे।

ऐसा नहीं है कि लैटिन अमेरिका के देश स्वतंत्र रूप से आर्थिक विकास नहीं कर सकते थे। पेरेगुए का ही उदाहरण लें; दक्षिण अमेरिका के लगभग केंद्र में स्थित यह देश उत्तर में ब्राजिल से और दक्षिण में अर्जेनटिना से घिरा हुआ है। 1819 और 1870 के बीच लगातार तीन तानाशाहों के शासन काल में पेरेगुए ने खाद्यान्न में आत्म निर्भरता प्राप्त कर ली। बड़ी भू सम्पत्तियों पर कब्जा करके उन्हें छोटे किसानों को दे दिया गया। रेलवे और टेलीग्राफ की लाइनें बिछाई गईं और आधुनिक वाष्पचालित नौ सेना की स्थापना हुई। सबसे बड़ी बात यह है कि इसमें विदेश से कोई ऋण नहीं लिया गया परंतु पेरिगुए की इस बढ़ती समृद्धि को देखकर अर्जेनटिना और ब्राजिल को ईर्ष्या हुई और अन्ततः उरूगुए की सहायता से उन्होंने पेरिगुए पर आक्रमण कर लिया और यह युद्ध छः वर्षों (1864-1870) तक चला। इस युद्ध के अंत तक पेरिगुए की 90 % पुरुष जनसंख्या का विध्वंस हो गया। अगले पांच वर्षों तक वहां सैनिक शासन रहा और इस दौरान पेरिगुए की सारी लोक संस्थाएं नष्ट कर दी गईं। विदेशी पूंजी का आयात किया गया और बड़ी भू सम्पत्तियां फिर से उभर आईं। बर्न्स, रैल्फ, लरनर, और नेखेम के अनुसार "पेरिगुए लैटिन अमेरिका का ऐसा देश था जो 20वीं शताब्दी में प्रविष्ट होते समय पिछड़ा और गरीब बन गया था।"

23.3.3 औटोमन साम्राज्यवाद

औटोमन साम्राज्य में एनोटोलिया (वर्तमान तुर्की), बालकन राज्य (ग्रीस, सर्बिया, बोसनिया, हर्जेगोविना, मोल्डिाविया, बलाशिया, अल्बानिया और रूमानिया), मिस्त्र और सीरिया शामिल थे। आमतौर पर यह माना जाता है कि 17वीं शताब्दी के बाद औटोमन साम्राज्य विघटन की ओर उन्मुख था परंतु पामुक के मतानुसार यह आर्थिक से ज्यादा राजनैतिक विघटन प्रतीत होता है परंतु औटोमन साम्राज्य में विविध क्षेत्र शामिल थे और इनके बारे में कोई सामान्य धारणा नहीं बनाई जा सकती है। 16 वीं शताब्दी के उत्तरार्ध और 17वीं शताब्दी के दौरान खासतौर पर अनाटोलिया में जहां हस्तशिल्प उत्पादन में गिरावट आई वहीं 18वीं शताब्दी के दौरान बालकन राज्यों, पश्चिमी अनाटोलिया और सीरिया से यूरोप को हुए कृषि निर्यात की मात्रा में वृद्धि हुई। नेपोलियन युद्धों के बाद यूरोप के साथ व्यापार तेजी से बढ़ा। परंतु यहां भी पूरा साम्राज्य बढ़ते हुए यूरोपीय व्यापार में शामिल नहीं हो पाया। इसमें बालकन राज्य और मिस्त्र ही भागीदार बन पाए। अनाटोलिया की भागीदारी अपेक्षकृत कम थी। इसके परिणमास्वरूप इस क्षेत्र में कृषि का उत्पादन मुख्य रूप से छोटे किसान करते रहे जबकि बालकन राज्यों और मिस्त्र में शक्तिशाली भूमिपति समूह उभर रहे थे। उनकी बड़ी भू सम्पत्तियां थीं और वे यूरोपीय बाजारों की कृषीय मांगों को पूरा करने की दिशा में प्रयत्नशील थे। 19वीं शताब्दी के दौरान औटोमन नौकरशाही की केंद्रीकृत राज्य संरचना के साथ यही भूमि से संबंधित हित टकराए।

पहले औटोमन साम्राज्य और ब्रिटेन के बीच 1838 में और बाद में अन्य यूरोपीय देशों के साथ मुक्त व्यापार संधि पर हस्ताक्षर हुए। यह संधि 1842 और 44 के बीच चीन में हुई संधियों की याद दिलाती है। इसके

बाद औटोमन अर्थव्यवस्था में विदेशी व्यापार की हिस्सेदारी संभव हुई जो 19वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में तेजी से बढ़ा। इसके कारण विश्व बाजार के लिए कृषीय उत्पाद में वृद्धि हुई और लगभग इसके साथ-साथ पश्चिमी वस्तुओं की उपलब्धता से उत्पन्न हुई प्रतिस्पर्धा के कारण हस्तशिल्प खासतौर पर कपड़े के उत्पादन में गिरावट आई। हालांकि ये प्रवृत्तियां तटीय क्षेत्रों में देखने को मिलीं। यहां तक कि 1870 के मध्य के दशक में कृषि उत्पादन का 12 % से 15 % तक ही निर्यात किया जाता था।

1850 के दशक में औटोमन राज्य ने यूरोपीय वित्तीय बाजारों से प्रतिकूल शर्तों पर भारी ऋण लेना शुरू किया। यूरोप से आए इस धन का ज्यादातर उपयोग विदेशों से सैनिक अस्त्र खरीदने के लिए किया गया। कुछ उपभोक्ता वस्तुएं भी खरीदी गईं। 1850 के दशक से खासतौर पर तटीय क्षेत्रों में रेलवे लाइन बिछाने के लिए साम्राज्यवादी शक्तियों ने सीधे तौर पर पूंजी लगाई। 1863 में कागज मुद्रित करने का एकाधिकार विदेशी स्वामित्व वाले आटोमन बैंकों को सौंप दिया गया और इस प्रकार औटोमन साम्राज्य स्वर्ण मानक व्यवस्था से जुड़ गया। 1866 में विदेशियों को औटोमन क्षेत्रों में कृषीय भूमि खरीदने की अनुमति दे दी गई। इसलिए जहां 1830 और 1870 के दशकों के बीच *तंजिमात* के तहत राजनैतिक आधुनिकीकरण की प्रक्रिया शुरू हुई उसी के साथ-साथ आर्थिक 'आधुनिकीकरण' या औटोमन साम्राज्य को विश्व बाजार के साथ जोड़ने तथा विदेशी व्यापार और निवेश के लिए आटोमन अर्थव्यवस्था का द्वार खोल दिया गया। राजनैतिक प्रक्रिया से आर्थिक विस्तार में मदद मिली। 1873 में मंदी का दौर आया जिसने यूरोपीय वित्तीय बाजारों के साथ औटोमन साम्राज्य को भी प्रभावित किया। बाहर से पूंजी और वित्त आना बंद हो गया। इसी समय 1873-74 में मध्य एनाटोलिया में भीषण अकाल पड़ा। 1877-78 के बीच हुए युद्ध में रूस से हार जाने के बाद औटोमन साम्राज्य को अपने काफी इलाकों से हाथ धोना पड़ा। इसके कारण वित्तीय संकट उत्पन्न हुआ। औटोमन साम्राज्यवाद बाहर से लिए गए ऋण की अदायगी करने में अपने को असमर्थ पाने लगा। मंदी के कारण औटोमन साम्राज्यवाद का विदेशी व्यापार भी घटा। 1896 में विश्व बाजार में अमेरिकी गेहूं आने के बाद अन्तरराष्ट्रीय स्तर पर गेहूं की कीमतें काफी कम हो गई। अब औटोमन भूमिपतियों के सामने केवल अपने उत्पाद के निर्यात की ही समस्या नहीं थी बल्कि अमेरिकी गेहूं आयात किए जाने से आन्तरिक प्रतिस्पर्धा का भी खतरा पैदा हो गया था। निर्यात से होने वाली आय में कमी होने से देश में हस्तशिल्प के उत्पादन में भी कमी आई क्योंकि इसके खरीददार कम हो गए। विश्व स्तर पर कीमतों में आई कमी के कारण अब औटोमन साम्राज्य को अपने ऋण की अदायगी के लिए अधिक मुद्रा का भुगतान करना था। इस भुगतान के लिए मुद्रा उधार लेनी थी। इससे एक आन्तरिक राजकोषीय संकट पैदा हो गया और यूरोपीय पूंजीवाद के लिए औटोमन अर्थव्यवस्था में घुसपैठ करना आसान हो गया।

उन्नीसवीं शताब्दी के अंत तक, साम्राज्यवादी शक्ति के रूप में ब्रिटेन लाभप्रद स्थिति में नहीं रह गया और ब्रिटेन, फ्रांस, जर्मनी, रूस और यहां तक कि इटली के बीच टकराव शुरू हुआ। औटोमन साम्राज्य में भी इनके बीच टकराव हुआ। प्रथम विश्व युद्ध तक औटोमन साम्राज्य के विदेशी व्यापार में ब्रिटिश अंश सबसे ज़्यादा था परंतु 1870 के दशक के बाद औटोमन साम्राज्य में ब्रिटिश निवेश लगभग समाप्त हो गया। औटोमन साम्राज्य ने जर्मनी और फ्रांस को रेल लाइन बिछाने जैसी रियायतें सौंप दीं। इससे यह साम्राज्य फ्रांसीसी और जर्मन प्रभाव क्षेत्र में विभाजित हो गया। रेलवे लाइनों की स्थापना और यूरोप में आर्थिक मंदी का दौर समाप्त होने पर 1890 के दशक के मध्य में विदेशी व्यापार तेजी से बैढ़ा। सेना के बढ़ते खर्च की पूर्ति आंतरिक राजस्व से पूरी न हो सकने के कारण इस्तानाबुल शासन यूरोपीय शक्तियों से बड़ी रकम उधार ले रहा था। इससे साम्राज्यवादी ताकतें औटोमन साम्राज्य पर अपना नियंत्रण आसानी से स्थापित कर सकीं। औटोमन साम्राज्य से यूरोप को काफी मात्रा में धन हस्तांरित हुआ। बीसवीं शताब्दी के आरंभ में औटोमन साम्राज्य के कई हिस्से मैनचेस्टर, हैमबर्ग और मारसेल्स के प्रभाव क्षेत्र बन गए। औटोमन साम्राज्य की आंतरिक कड़ियां कमजोर पड़ती जा रही थीं।

23.3.4 इरान

फारस (तब इरान का यही नाम था) और औटोमन साम्राज्य की स्थिति लगभग एक सी थी। मध्यकालीन युग में औटोमन और फारस साम्राज्य प्रमुख मुस्लिम साम्राज्य थे। 16वीं शताब्दी में औटोमन शासकों के समय इरान के शाहों ने पूर्वी बाजारों में यूरोपीय व्यापारियों का स्वागत किया क्योंकि इससे उनके व्यापार में वृद्धि हुई। पहले पहल यूरोपीय शक्तियों और शासन के बीच समान शर्तों पर समझौते हुए। परंतु जैसे-जैसे

पश्चिम की सैन्य शक्ति मजबूत होती चली गई वैसे-वैसे विदेशी वर्चस्व सामने आया। इरानी शासक अपने क्षेत्रों में यूरोपीय सैनिक और नागरिक प्रौद्योगिकी को शामिल करना चाहते थे परंतु यह प्रौद्योगिकी काफी महंगी थी। इसके लिए उन्हें विदेशी बैंकों से ऋण लेना पड़ा। धीरे-धीरे इरानी सरकार ब्रिटिश और रूसी बैंकों की कर्जदार हो गई। विदेशियों को सीमा शुल्क से संबंधित कार्य सौंपा गया और उन्हें इरान के वित्त मंत्रालय में परामर्शदाता बनाया गया।

ब्रिटिश और रूस के आपसी वैमनस्य और अविश्वास के कारण चीन के ही समान इरान भी विदेशियों के कब्जे से बचा रहा। इसका फायदा उठाकर इरान के शासक एक साम्राज्यवादी शक्ति के खिलाफ दूसरी साम्राज्यवादी शक्ति को किसी न किसी बहाने लड़ाते रहते थे। लेकिन प्रसिद्ध इतिहासकार ह्यूज सेटोन-वास्टन का मानना है कि "आंग्ल-रूसी शक्ति संतुलन के कारण इरान सामाजिक और सांस्कृतिक दृष्टि से अगतिशील बना रहा।"

उन्नीसवीं शताब्दी के अंत में पश्चिम के पूंजीवादी इरान में बड़ी संख्या में दाखिल होने लगे। इरानियों ने भी इनका विरोध किया। स्थानीय विरोध के कारण 1892 में नसीरूद्दिन शाह ने ब्रिटिश कम्पनी को तम्बाकू की तराई और बिक्री के लिए दिया गया एकाधिकार वापस ले लिया। इसके बावजूद इरान में आयात की मात्रा में तेजी से वृद्धि हुई और इससे इरान के व्यापारियों को काफी नुकसान पहुंचा।

बोध प्रश्न 2

1) चीन में अर्ध उपनिवेशवाद की व्यवस्था पर विचार कीजिए।

....

....

....

....

....

....

2) लैटिन अमेरिका में अर्ध औपनिवेशिक शासन अन्य देशों से किस प्रकार अलग था ?

....

....

....

....

....

....

23.4 सारांश

क्या अप्रत्यक्ष शासन अपने शासित क्षेत्रों का आधुनिकीकरण कर सका ? इस मुद्दे पर काफी बहस हो चुकी है और यह अभी भी विवादास्पद बना हुआ है। पॉल बारन तथा ऐंद्रे गुंडर का मानना था कि पूंजीवाद स्वाभाविक रूप से शोषण करने वाली व्यवस्था है। अतः उपनिवेशवाद विकास और आधुनिकीकरण का विरोधी होता है। उपनिवेशों में हुए विकास को गुंडर ने "अल्पविकास का विकास" कहा। लैटिन अमेरिका के संदर्भ में यह निश्चित रूप से सही है जहां प्रजातंत्र और स्वतंत्र पूंजीवादी विकास को गहरा धक्का पहुंचा। इरान के बारे में भी यही सच है। गुंडर का मानना है कि पूंजीवादी ढांचे को तोड़ने के बाद ही कोई देश अपनी अर्थव्यवस्था को मजबूत बना सकता है। चीन की सफलता के पीछे देशी साम्यवादी आंदोलन की ताकत

थी जो विश्व पूंजीवाद की चंगुल से अपने को मुक्त कर सका। औटोमन साम्राज्य के हिस्से सामाजवादी या पूंजीवादी प्रभाव में थे। यह कहना सही नहीं है कि किसी उपनिवेश के लिए पूर्ण उपनिवेशवाद की अपेक्षा अर्ध उपनिवेशवाद बेहतर था। ऐसा प्रतीत होता है कि अर्ध उपनिवेशवाद में शोषकों के शोषण के खिलाफ देशी सरकार के प्रतिरोध की गुंजाइश रहती है। प्रत्यक्ष शासन में किसी देशी सरकार के न होने से यह गुंजांइश नहीं रहती। इसलिए 1860 और 1908 के बीच औटोमन राज्य ने आयात शुल्क लगाने ओर अपने देशी उत्पादों को संरक्षण प्रादान करने की कोशिश की। अन्य मामलों में अर्ध उपनिवेशवाद और पूर्ण उपनिवेशवाद के परिणामों में कोई खास अंतर नहीं होता। अर्ध उपनिवेशवाद में देशी समूह साम्राज्यवादी ताकतों से मिले होते हैं। अत: प्रत्यक्ष शासन की अपेक्षा अप्रत्यक्ष शासन में हो रहे आर्थिक शोषण को पहचानना बहुत ही मुश्किल होता है। उपर्युक्त वर्णित सभी क्षेत्रों में बीसवीं सदी के दौरान साम्राज्यवाद का प्रभाव किसी न किसी रूप में अवश्य पड़ा। कहीं तो अर्थव्यवस्था का ग्रामीणकरण हुआ और कहीं औद्योगिक विकास अपेक्षाकृत धीमी गति से हुआ, कमजोर प्रजातांत्रिक ढांचा विकसित हुआ जिसके कारण किसी न किसी रूप में कट्टरपंथ का उदय हुआ।

23.5 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) देखिए भाग 23.2

बोध प्रश्न 2

1) देखिए उपभाग 23.3.1

2) देखिए उपभाग 23.3.2